माननीय न्यायधीस अजय कुमार मित्तल जी

नानू खान व अन्य – अपीलकर्ता

बनाम

मैसर्स ओरिएंटल स्पन पाइप कंपनी लिमिटेड – उत्तरदायी

आर एस ए 1985 की संख्या 607

14 मार्च, 2008

भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1994–एस.एस. 4 और 6-प्रतिवादी द्वारा फैक्ट्री स्थापित करने के लिए अपीलकर्ताओं की भूमि का अधिग्रहण किया गया-कब्जा दिया गया, हस्तांतरण विलेख निष्पादित किया गया-कुछ भूमि के संबंध में विवाद जो न तो राज्य द्वारा अधिग्रहित की गई थी और न ही एसएस 4 और 6 के तहत अधिसूचनाओं में शामिल थी-कब्जे के लिए मुकदमा-क्या प्रतिवादी है भूमि पर प्रतिकूल कब्ज़ा करके मालिक बन गया है जब उन्होंने उस पर निर्माण किया है -

यह अभिनिर्धारित किया जाता है की किसी भी प्रतिवादी के पास असली मालिक के स्वामित्व से इनकार करने वाली संपत्ति नहीं थी और प्रतिवादी के कब्जे को अपीलकर्ताओं के कब्जे के लिए शत्रुतापूर्ण नहीं कहा जा सकता है - अपीलकर्ताओं को इसका हकदार माना जाता है मुकदमे की भूमि पर कब्ज़ा जो कि प्रतिवादी का गलत और अवैध कब्ज़ा है।

यह अभिनिर्धारित किया गया है कि राज्य सरकार ने 1971 में विवादग्रस्त भूमि के संबंध में एक हस्तांतरण विलेख निष्पादित किया था, जिस पर राज्य के पास कोई कानूनी स्वामित्व नहीं था क्योंकि इसे कभी भी अधिग्रहित नहीं किया गया था। इसके द्वारा। इस प्रकार, प्रतिवादी ने वास्तविक मालिक के स्वामित्व को नकारते हुए संपत्ति पर कब्जा नहीं किया और प्रतिवादी का कब्जा वादी के कब्जे के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह नहीं माना जा सकता है कि प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से मालिक बन गया था। एक बार ऐसा हो जाने पर, वादी मुकदमा भूमि पर कब्ज़ा पाने के हकदार हैं। इस प्रकार, पहली अपीलीय अदालत वादी-अपीलकर्ताओं को कब्जे की डिक्री देने वाले ट्रायल कोर्ट के फैसले और डिक्री को उलटने में सही नहीं थी।

(पैरा 14 और 15)

माननीय न्यायधीश अजय कुमार मित्तल जी

(1) यह वादी-नानू खान और अन्य के उदाहरण पर दूसरी अपील है, जिनके कब्जे के मुकदमे पर ट्रायल कोर्ट ने फैसला सुनाया था, लेकिन प्रतिवादी की अपील पर, ट्रायल कोर्ट के फैसले को पहली अपीलीय अदालत ने खारिज कर दिया था और परिणामस्वरूप वादी ' मुकदमा खारिज कर दिया गया।

(2) कब्जे के लिए एक मुकदमा इस दावे के साथ दायर किया गया था कि वादी 5 कनाल और 12 मरला भूमि के मालिक थे, जो कि बल्लबगढ़ तहसील के ग्राम रन्हेरा खेड़ा की राजस्व संपत्ति में स्थित आयत संख्या 26 के खसरा संख्या 20/1 में शामिल थी। , जिला फ़रीदाबाद। लगभग वर्ष 1960 में, राज्य ने प्रतिवादी के लिए एक कारखाना स्थापित करने के लिए कुछ भूमि का अधिग्रहण किया। वर्तमान अपीलकर्ता-वादी सहित राज्य द्वारा अर्जित भूमि का कब्ज़ा 31 मार्च, 1961 को प्रतिवादी को सौंप दिया गया था और उस तथ्य को प्रमाणित करने वाली एक प्रविष्टि (प्रदर्शनी डी-2) रिकॉर्ड में दर्ज की गई थी। पटवारी. प्रतिवादी के पक्ष में राज्य द्वारा 22 नवंबर, 1971 को एक हस्तांतरण विलेख भी निष्पादित किया गया था। प्रतिवादी ने अपीलकर्ताओं की भूमि सहित भूमि पर इमारतें खड़ी कर दीं। भूमि का कब्ज़ा सौंपे जाने के लगभग 18 साल बाद यानी वर्ष 1979 में जब वादी ने इस न्यायालय के 5 जनवरी, 1978 के फैसले के अनुसार मुआवजे की बढ़ी हुई राशि के भुगतान के लिए आवेदन किया, तो यह पता चला कि भूमि आयत संख्या 26 के खसरा संख्या 20/1 में शामिल 5 कनाल 12 मरला भूमि का अधिग्रहण नहीं किया गया था और न ही यह भूमि उपरोक्त उद्देश्य के लिए जारी भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 6 के तहत अधिसूचना में शामिल थी। यह पाया गया कि आयत संख्या 36 के खसरा संख्या 26 में शामिल 4 कनाल 2 मरले की कुछ अन्य भूमि का अधिग्रहण किया गया था। हालाँकि, राज्य द्वारा आयत संख्या 26 के खसरा संख्या 20/1 की भूमि का कब्जा प्रतिवादी को दे दिया गया था और आयत संख्या 36 के खसरा संख्या 26/1 की भूमि का कब्जा नहीं लिया गया था। सामने आई इस गलती पर ही पूरा विवाद खड़ा हुआ। विवाद के इस महत्वपूर्ण पहलू का विस्तार से उल्लेख गुड़गांव के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, दिनांक 7 जून, 1979 (प्रदर्शनी पी-1) के आदेश में किया गया है, जिन्होंने बढ़े हुए मुआवजे के भुगतान के लिए वादी के आवेदन पर विचार किया था। प्रतिवादी द्वारा प्रतिवाद किया गया। जहां भी संदर्भ की आवश्यकता होगी, संदर्भित करने के लिए विभिन्न प्रारंभिक आपत्तियां उठाते हुए, लिखित बयान में कहा गया था कि प्रतिवादी ने 22 नवंबर, 1971 के हस्तांतरण विलेख के माध्यम से भूमि का स्वामित्व और कब्ज़ा हासिल कर लिया था, जिसे उसके द्वारा अधिग्रहित किया गया था। 25 अक्टूबर 1960 को या उससे पहले राज्य। इस प्रकार एक विशिष्ट दलील दी गई कि प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से भी विवाद में भूमि का मालिक बन गया। आगे यह भी कहा गया कि चूंकि प्रतिवादी ने कारखाने के लिए भूमि विकसित की थी और उस पर इमारतें खड़ी की थीं, इसलिए वह भी अविभाज्य है।

(3) पक्षों की उपरोक्त दलीलों पर निम्नलिखित मुद्दों पर सुनवाई की गई:–

1. क्या प्रतिवादी ने गलत तरीके से और अवैध रूप से विवादित भूमि पर कब्जा कर लिया है, जैसा कि आरोप लगाया गया है? ओपीपी

2. क्या वादी को 26 मई 1981 के आदेश के बाद विवादित भूमि पर अवैध और गलत कब्जे के बारे में पता चला, जैसा कि आरोप लगाया गया है? ओपीपी

3. जैसा कि आरोप लगाया गया है, क्या वादी विवादग्रस्त भूमि पर कब्जे के लिए डिक्री का हकदार है? ओपीपी

4. जैसा कि आरोप लगाया गया है, क्या प्रश्नगत भूमि भी प्रतिवादी के लिए 25 अक्टूबर, 1960 को या उसके आसपास अधिग्रहित की गई थी? ओपीडी

5. क्या भूमि हरियाणा राज्य में निहित थी और 22 जनवरी, 1971 के हस्तांतरण विलेख के माध्यम से प्रतिवादी के पक्ष में स्थानांतरित कर दी गई थी, जैसा कि आरोप लगाया गया है? ओपीडी

6. क्या वादी के पास वर्तमान मुकदमा दायर करने का कोई अधिकार नहीं है? ओपीडी

7. क्या प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे से वाद भूमि का मालिक बन गया है? ओपीडी

8. क्या मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित है? ओपीडी

9. क्या वादी प्रतिवादी के खिलाफ कार्रवाई के किसी कारण का खुलासा नहीं करता है? ओपीडी.

10. क्या वाद भूमि ने अपना मूल चरित्र और अस्तित्व खो दिया है और अब वह कृषि भूमि नहीं रही, जैसा कि अनुरोध किया गया था? ओपीडी

11. राहत.

(4) ट्रायल कोर्ट ने सबूतों की सराहना करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी ने विवाद में संपत्ति पर गलत और अवैध कब्जा कर रखा था। वाद संख्या 2 के तहत कवर की गई उपरोक्त उद्देश्य के लिए अर्जित भूमि में वाद भूमि को शामिल नहीं किए जाने की जानकारी के बारे में वादी की याचिका स्वीकार कर ली गई, और यह माना गया कि उन्हें गलत और अवैध कब्जे के बारे में पता चल सकता है। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, गुड़गांव के आदेश की तारीख पर ही प्रतिवादी ने इस न्यायालय के फैसले के संदर्भ में मुआवजे की बढ़ी हुई राशि के भुगतान के लिए वादी के आवेदन पर पारित किया। ट्रायल कोर्ट ने एक दृढ़ निष्कर्ष निकाला कि विवाद में भूमि राज्य द्वारा कभी भी अधिग्रहित नहीं की गई थी। इस संबंध में तैयार किए गए अंक

संख्या 4 का उत्तर वादी पक्ष के पक्ष में तदनुसार दिया गया। जहां तक मुद्दा संख्या 5 का संबंध है, यह पाया गया कि चूंकि हरियाणा राज्य को भूमि में कोई दिलचस्पी नहीं थी, इसलिए प्रतिवादी के पक्ष में हस्तांतरण विलेख ने उसे उक्त संपत्ति में कोई अधिकार, शीर्षक या हित नहीं दिया। मुद्दा संख्या 7 के तहत जिसके बारे में केवल प्राथमिक विवाद बचा हुआ बताया गया है, ट्रायल कोर्ट ने माना कि उस संदर्भ में प्रतिवादी द्वारा उठाई गई याचिका तर्कसंगत नहीं थी क्योंकि प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए दावा करने वाली पार्टी को यह स्थापित करना होगा मालिक की जानकारी में कब्ज़ा निरंतर, शत्रुतापूर्ण और कुख्यात था। यदि इसे बिल्कुल ट्रायल कोर्ट के शब्दों में कहा जाए, तो यहां अंक संख्या 7 के तहत उस संबंध में निष्कर्ष का एक शब्दशः उद्धरण आवश्यक है, जो इस प्रकार है: "वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, यह किसी भी तरह से संभव नहीं है।" इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रतिवादी ने मालिक की जानकारी के अनुसार विवादित परिसर पर प्रतिकूल कब्जा कर रखा है और उसका कब्जा किसी भी तरह से वादी के कब्जे के प्रतिकूल नहीं है। विवाद में संपत्ति के अधिग्रहण के वास्तविक विश्वास के तहत केवल कब्जे का विनिवेश यह नहीं कहा जा सकता है कि कब्जा मालिक के प्रतिकूल है। परिणामस्वरूप, इस मुद्दे का फैसला वादी के पक्ष में लेकिन प्रतिवादी के खिलाफ किया जाता है।

(5) अंततः, यह मानते हुए कि विवाद में संपत्ति राज्य सरकार द्वारा कभी भी अर्जित नहीं की गई थी और प्रतिवादी ने उस पर गलत और अवैध कब्जा कर रखा था, ट्रायल कोर्ट ने वादी के मुकदमे पर फैसला सुनाया।

(6) प्रतिवादी ने जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील में मामला उठाया। प्रथम अपीलीय अदालत के समक्ष, प्रथम दृष्टया यह ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादी-अपीलकर्ता ने अपनी अधीनता केवल प्रतिकूल कब्जे के बिंदु तक ही सीमित रखी। चूंकि अब तक पार्टियों के बीच जो विवाद मौजूद है, वह केवल एक ही विवाद यानी प्रतिकूल कब्जे के इर्द-गिर्द केंद्रित है, इसलिए संदर्भ में ट्रायल कोर्ट के निष्कर्ष को उलटते हुए प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष को इस प्रकार देखा गया है:

"निर्णय के लिए संक्षिप्त और सरल प्रश्न यह है कि क्या तथ्य दर्शाते हैं कि अपीलकर्ताओं का कब्ज़ा स्वामित्व में बदल गया है। मेरी राय में, अपीलकर्ताओं के पास एक मूर्खतापूर्ण मामला है। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 65 के तहत, स्वामित्व के आधार पर अचल संपत्ति पर कब्जे के मुकदमे के लिए प्रदान की गई परिसीमा की अवधि उस तारीख से 12 वर्ष है जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रतिकूल हो जाता है। भूमि का कब्ज़ा 31 मार्च, 1961 को अपीलकर्ता को सौंप दिया गया था, जिसके बाद वे इस पर खुले तौर पर कब्ज़ा कर रहे थे और प्रतिवादियों, भूमि के मालिकों सहित हर निकाय की जानकारी में थे। यह भी उतना ही सच है कि विचाराधीन भूमि अधिग्रहीत भूमि का हिस्सा नहीं थी। इसलिए, यह एक ऐसा मामला है जहां अपीलकर्ताओं ने एक अमान्य लेनदेन के तहत संपत्ति पर कब्जा कर लिया। यह प्राथमिक है कि जहां कोई व्यक्ति स्थानांतरण के रंग के तहत संपत्ति पर कब्जा कर लेता है जो निष्क्रिय है, ऐसा कब्जा वास्तविक मालिक के लिए प्रतिकूल है, क्योंकि ऐसे मामलों में हस्तांतरणकर्ता को हस्तांतरण के तहत कोई स्वामित्व नहीं मिलता है और इसलिए, उसका कब्जा बिना शीर्षक के होता है। और असली मालिक की उपाधि का उल्लंघन है। यदि किसी प्राधिकार की आवश्यकता हो, तो पश्चिम बंगाल राज्य बनाम द डेलहौजी इंस्टीट्यूट सोसाइटी ए.आई.आर. का संदर्भ लिया जा सकता है। 1970 सुप्रीम कोर्ट 1778। यह तर्क कि उत्तरदाताओं का यह विश्वास था कि भूमि का अधिग्रहण नहीं किया गया था और परिणामस्वरूप कब्ज़ा शत्रुतापूर्ण हो जाएगा जब उन्हें उस गलत धारणा के बारे में पता

चल जाएगा, पूरी तरह से बिना किसी तथ्य के है और इसने अपीलकर्ताओं के कब्जे को नहीं रोका है। प्रतिकूल और शत्रुतापूर्ण होता जा रहा है। मैं मुद्दा संख्या 7 पर ट्रायल कोर्ट के निष्कर्ष को उलट देता हूं।"

(7) अपील को स्वीकार करते हुए, प्रथम अपीलीय अदालत ने ट्रायल कोर्ट के फैसले और डिक्री को 6 नवंबर, 1984 के फैसले और डिक्री द्वारा रद्द कर दिया और परिणामस्वरूप वादी के मुकदमे को भी खारिज कर दिया।

(8) इस न्यायालय के समक्ष दूसरी अपील में वादी इस प्रकार हैं।

(9) मैंने पक्षों के विद्वान वकीलों को सुना है और उनकी सहायता से रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

(10) अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने आग्रह किया कि जब वादी-अपीलकर्ताओं ने इस न्यायालय के 5 जनवरी, 1978 के फैसले के संदर्भ में मुआवजे की बढ़ी हुई राशि का भुगतान जारी करने के लिए एक आवेदन किया, तो उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ कि भूमि की माप 5 कनाल 12 मरला है। आयत संख्या 26 के खरसा संख्या 20/1 में शामिल, राज्य द्वारा अधिग्रहित नहीं किया गया था और वे अभी भी इसके मालिक थे। इसके बाद, कब्जे के लिए वर्तमान मुकदमा दायर किया गया था। विद्वान वकील के अनुसार, राज्य ने उक्त भूमि पर कब्जा दे दिया था, लेकिन इससे वादी-अपीलकर्ताओं का स्वामित्व नहीं छीना जाएगा और वादी-प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे से मालिक नहीं बनेगा, क्योंकि प्रतिकूल कब्जे से मालिक बनने के लिए आवश्यक सामग्री है। कब्ज़ा यानी वास्तविक मालिक की जानकारी के लिए खुला और शत्रुतापूर्ण कब्ज़ा नहीं था और इसलिए, उन्हें प्रतिकूल कब्ज़े से मालिक नहीं माना जा सकता था। वकील ने अपने तर्क के समर्थन में टी. अंजनप्पा और अन्य बनाम सोमलिंगप्पा और अन्य, (1) में दिए गए शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा जताया और कहा कि इस अदालत के विचार के लिए इस अपील में कानून का निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है: " क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रतिकूल कब्जे की दलील मूल मालिकों यानी वादी-अपीलकर्ताओं के स्वामित्व को अस्वीकार किए बिना प्रतिवादी-प्रतिवादी को उपलब्ध थी और उसी के आलोक में, निचली अपीलीय अदालत को उचित ठहराया गया था वादी-अपीलकर्ताओं द्वारा दायर कब्जे के मुकदमे को खारिज करना।"

(11) दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने निचली अपीलीय अदालत के फैसले और डिक्री का समर्थन किया।

(12) पार्टियों के विद्वान वकील की प्रस्तुति के मद्देनजर, मुझे लगता है कि वादी-अपीलकर्ताओं द्वारा तैयार/उठाया गया कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है और तदनुसार उक्त प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए अपील की जाती है।

(13) पक्षों के बीच शामिल विवाद की सराहना करने के लिए, रिकॉर्ड पर उपलब्ध कुछ सबूतों और तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक होगा। राज्य ने वर्ष 1960 में प्रतिवादी-प्रतिवादी द्वारा कारखाने की स्थापना के लिए कुछ भूमि का अधिग्रहण किया था और 31 मार्च, 1961 को उन्हें कब्जा दे दिया था। राज्य ने 1971 में उक्त भूमि के संबंध में एक हस्तांतरण विलेख भी निष्पादित किया था। हालाँकि, वर्ष 1979 में, वादी को पता चला कि आयत संख्या 26 के खसरा संख्या 20/1 में शामिल 5 कनाल और 12 मरला भूमि राज्य द्वारा अधिग्रहित नहीं की गई थी, जिसका कब्जा प्रतिवादी को दे दिया गया था- भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1984 की धारा 4 और 6 के तहत कोई अधिसूचना जारी किए बिना भी प्रतिवादी ने इसे प्राप्त कर लिया। अब जिस विवाद को सुलझाया जाना है, वह इस सवाल पर केंद्रित है कि क्या प्रतिवादी-प्रतिवादी 22 नवंबर, 1971 के कन्वेयंस डीड के निष्पादन के बाद उस पर प्रतिकूल कब्ज़ा करके मालिक बन गए हैं, जब उन्होंने उस पर निर्माण खड़ा कर

लिया है। टी. अंजनप्पा और अन्य के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के पैरा 12 में स्पष्ट रूप से निम्नानुसार निर्धारित किया था: "प्रतिकूल कब्जे की अवधारणा एक शत्रुतापूर्ण कब्जे पर विचार करती है यानी एक ऐसा कब्जा जो स्पष्ट रूप से या निहित रूप से स्वामित्व के इनकार में है असली मालिक. कब्ज़ा प्रतिकूल होना उस व्यक्ति का कब्ज़ा होना चाहिए जो दूसरे के अधिकारों को स्वीकार नहीं करता बल्कि उन्हें नकारता है। कानून का सिद्धांत दृढ़ता से स्थापित है कि जो व्यक्ति अपने स्वामित्व को प्रतिकूल कब्जे पर आधारित करता है, उसे स्पष्ट और सुस्पष्ट साक्ष्य द्वारा यह दिखाना होगा कि उसका कब्जा वास्तविक मालिक के प्रति शत्रुतापूर्ण था और दावा की गई संपत्ति पर उसके स्वामित्व से इनकार के समान है। यह तय करने के लिए कि क्या किसी व्यक्ति के कथित कृत्य प्रतिकूल कब्जे का गठन करते हैं, उन कृत्यों को करने वाले व्यक्ति का एनीमेशन सबसे महत्वपूर्ण कारक है। प्रतिकूल कब्ज़ा गलत तरीके से शुरू किया जाता है और सही के विरुद्ध लक्षित होता है। ऐसा कहा जाता है कि एक व्यक्ति संपत्ति को वास्तविक मालिक के प्रतिकूल रखता है, जब उस व्यक्ति ने मालिक के अधिकार से इनकार करते हुए उसे अपनी संपत्ति के आनंद से बाहर कर दिया है।

(14) सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि यदि प्रतिवादी निश्चित नहीं हैं कि असली मालिक कौन है, तो उनके शत्रुतापूर्ण कब्जे में होने का सवाल और सच्चे मालिक के स्वामित्व से इनकार करने का सवाल ही नहीं उठता। उपरोक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करने पर, यह देखा जा सकता है कि राज्य सरकार ने 1971 में विवादित भूमि के संबंध में एक हस्तांतरण विलेख निष्पादित किया था, जिस पर राज्य के पास कोई कानूनी स्वामित्व नहीं था क्योंकि इसे कभी भी अधिग्रहित नहीं किया गया था। यह। इस प्रकार, प्रतिवादी ने वास्तविक मालिक के स्वामित्व को नकारते हुए संपत्ति पर कब्जा नहीं किया और प्रतिवादी के कब्जे को वादी के कब्जे के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता है।

(15) उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह नहीं माना जा सकता कि प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से मालिक बन गया था। एक बार ऐसा हो जाने पर, वादी मुकदमा भूमि पर कब्ज़ा पाने के हकदार हैं। इस प्रकार, पहली अपीलीय अदालत वादी-अपीलकर्ताओं को कब्जे की डिक्री देने वाले ट्रायल कोर्ट के फैसले और डिक्री को उलटने में सही नहीं थी।

(16) डेलहौजी इंस्टीट्यूट के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संदर्भ, जिस पर ट्रायल कोर्ट के फैसले और डिक्री को उलटते समय निचली अपीलीय अदालत द्वारा भरोसा किया गया था, का भी प्रतिवादी के लिए कोई फायदा नहीं है। क्योंकि रिपोर्ट किए गए मामले में तथ्य यह थे कि एक सोसाइटी अवैध अनुदान पर जमीन पर कब्जा कर रही थी और उस पर कब्जा कर रही थी, जो सरकार के प्रतिकूल थी जो 60 वर्षों से अधिक समय से संपत्ति की मालिक थी और उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय मामले से यह निष्कर्ष निकला कि संस्थान प्रतिकूल कब्जे से मालिक बन गया था। हालाँकि, वर्तमान मामले में वह स्थिति नहीं है। तदनुसार, कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का, जैसा कि तैयार किया गया है, वादी के पक्ष में उत्तर दिया गया है।

(17) उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है। तदनुसार, प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा पारित 6 नवंबर, 1984 के फैसले और डिक्री को रद्द किया जाता है और वादी के पक्ष में और प्रतिवादी के खिलाफ एक डिक्री पारित की जाती है, जिसमें कहा गया है कि वे विचाराधीन भूमि के कब्जे के हकदार होंगे। वर्तमान में प्रतिवादी के गलत एवं अवैध कब्जे में है। कोई लागत नहीं.

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और कसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्यवन के उद्देश्य के लए उपयुक्त रहेगा

अर्शबीर कौर संधू

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी हरियाणा